General Studies
Test-1 (Solution)

उत्तर: 1

भारतीय चित्रकला की परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही है, जिसमें भित्ति चित्र (wall paintings or murals) एक प्रमुख स्थान रखते हैं। भित्ति चित्र वे चित्र होते हैं जो दीवारों, छतों या पत्थरों की सतह पर बनाए जाते हैं और ये धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों को चित्रित करते हैं। इनकी विविधता और दीर्घकालिकता भारतीय संस्कृति की गहराई को दर्शाती है।

भित्ति चित्रों का ऐतिहासिक विकास:

1. प्रागैतिहासिक काल (पूर्व ऐतिहासिक काल):
- भीमबेटका गुफाएं (मध्यप्रदेश) – लगभग 10,000 वर्ष पुराने चित्र मिलते हैं।
- विषय – शिकार, नृत्य, संगीत, दैनिक जीवन, पशु-पक्षी।
- रंग – प्राकृतिक रंग (गेरू, काजल, पत्तियों का रस आदि)।

2. प्राचीन काल (मौर्य से गुप्त काल):
- मौर्य एवं शुंग काल:
  - प्रारंभिक चित्रण बाराबर और नागार्जुनी गुफाओं में मिलता है।
  - चित्रों की संख्या कम लेकिन सजावटी प्रयोग।
- गुप्त काल:
  - अजंता गुफाएं (2nd BCE–6th CE) – बौद्ध जातक कथाओं का भव्य चित्रण।
  - चित्रों की विशेषताएँ: भाव-भंगिमा, गहराई, रंग संयोजन, कथा शैली, मानव सौंदर्य का आदर्श रूप।

3. मध्यकाल (7वीं–14वीं सदी):
- बाघ गुफाएं (मध्यप्रदेश): अजंता शैली का ही विस्तार।
- एलोरा (महाराष्ट्र): हिंदू, बौद्ध और जैन धर्मों के चित्र।
- सित्तनवसल (तमिलनाडु): जैन धर्म से संबंधित भित्तिचित्र।
- लेपाक्षी मंदिर (आंध्र प्रदेश): विजयनगर शैली के भित्ति चित्र।

4. मुगल और राजपूत काल:
- मुगलों द्वारा भित्ति चित्रण कम; लघु चित्रों पर अधिक ध्यान।
- राजस्थानी महलों व किलों (मेवाड़, बूंदी, कोटा, बीकानेर) में भित्ति चित्रों का उपयोग – धार्मिक, प्रेम प्रसंगों, दरबारी जीवन की झलक।
- कांगड़ा, गढ़वाल, बसोहली में भी भित्ति चित्रों की परंपरा विकसित हुई।

5. आधुनिक काल:
- स्वतंत्र भारत में सार्वजनिक भवनों, रेलवे स्टेशनों, संसद भवन आदि में भित्ति चित्रों का समावेश।
- आधुनिक कलाकारों जैसे नंदलाल बोस और सतीश गुजराल ने पारंपरिक भित्ति शैली को नया रूप दिया।

भित्ति चित्रों की विशेषताएँ:
- विषयवस्तु की विविधता: धार्मिक आख्यान, जातक कथाएं, महाकाव्य, लोक परंपराएं, दैनिक जीवन।
- स्थायित्व और तकनीक: दीवार पर चूने/प्लास्टर के ऊपर चित्रण।
  - फ्रेस्को (Fresco) तकनीक का उपयोग – गीली दीवार पर चित्रकारी।
  - प्राकृतिक रंगों का प्रयोग: गेरू, इन्द्रगोप, काजल, गोबर, नीला पत्थर, हरे पत्तों से निकाले गए रंग।
  - कथात्मकता (Narrative Quality): चित्र केवल सजावट नहीं बल्कि कहानी कहने का माध्यम।
- स्थानीय विविधताएँ:
  - दक्षिण भारत – लेपाक्षी, सित्तनवसल
  - पश्चिम भारत – अजंता, बाघ
  - उत्तर भारत – कांगड़ा, बूंदी, अलवर
  - पूर्व भारत – उड़ीसा के मंदिरों की भित्तियाँ।
- भित्ति चित्रों का सांस्कृतिक और कलात्मक महत्व:
  - ये चित्र भारतीय समाज की धार्मिकता, नैतिक मूल्यों और सामूहिक चेतना को दर्शाते हैं।
  - प्राचीन भारत की सामाजिक संरचना, वेशभूषा, संगीत, नृत्य आदि की जानकारी का स्रोत।
  - कला के माध्यम से धर्म का प्रचार – जैसे बौद्ध जातक कथाएं।
  - स्थानीय लोक संस्कृति और परंपराओं का दर्पण।

निष्कर्ष:

भारतीय भित्ति चित्रकला न केवल एक कलात्मक परंपरा है, बल्कि यह भारतीय सभ्यता, धार्मिक सोच और सामाजिक जीवन की एक जीवंत धरोहर भी है। इसकी विविधता और निरंतरता इसे विशिष्ट बनाती है। आज जब यह परंपरा लुप्त होती जा रही है, तो आवश्यकता है कि हम इसके संरक्षण, पुनरुद्धार और शिक्षण को प्रोत्साहित करें ताकि यह अमूल्य धरोहर आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रह सके।

उत्तर: 2

सिन्धु घाटी सभ्यता (2600–1900 ई.पू.) विश्व की प्राचीनतम नगरी सभ्यताओं में से एक थी, जिसकी कलात्मक अभिव्यक्तियाँ (मूर्तिकला, चित्रकला, शिल्प आदि) तथा स्थापत्य अवशेष (नगर योजना, भवन निर्माण, स्नानागार आदि) उसके समाज की परिपक्वता और बहुआयामी विकास का संकेत देते हैं। ये अवशेष उसकी सामाजिक संरचना, आर्थिक समृद्धि तथा सांस्कृतिक मूल्यों के दर्पण रूप में सामने आते हैं।

1. सामाजिक पक्ष का प्रतिबिंब:
- नगर योजना व जल निकास: सुव्यवस्थित ग्रिड पैटर्न, पक्की सड़कों, जल निकासी प्रणाली और स्नानागार जैसे अवशेष दर्शाते हैं कि समाज स्वच्छता, सार्वजनिक स्वास्थ्य और सामुदायिक जीवन के प्रति सजग था।
- महान स्नानागार: मोहनजोदड़ो का 'ग्रेट बाथ' किसी सामाजिक या धार्मिक समारोह का केंद्र रहा होगा, जो सामूहिकता और सामाजिक अनुष्ठानों की संस्कृति को दर्शाता है।
- धातु व मूर्तिकला (प्रमुख: नर्तकी की कांस्य मूर्ति): यह मूर्ति नारी की सामाजिक भागीदारी और सौंदर्यबोध को दर्शाती है।

2. आर्थिक पक्ष का प्रतिबिंब:
- मुद्राएँ और वजन प्रणाली: व्यापारिक व्यवस्था के लिए मानकीकृत वजन और माप प्रणाली तथा मुद्राओं का उपयोग, परिष्कृत वाणिज्यिक प्रणाली और व्यापारिक संबंधों का संकेत देता है।
- मोहरें और शिल्पकला: पशु-आकृतियों से युक्त मुहरें व्यापारिक पहचान व सम्पत्ति पर अधिकार की प्रणाली को दर्शाती हैं।
- शिल्पकेंद्र: चन्हूदड़ो जैसे नगर शिल्प उत्पादन और वस्त्र रंगाई के केंद्र

Add-New Delhi E-mail-k.nitinca@gmail.com Contact-9999154587

रहे, जिससे श्रम विभाजन और आर्थिक विविधता स्पष्ट होती है।

3. सांस्कृतिक पक्ष का प्रतिबिंब:

- धार्मिक प्रतीक: पीपल वृक्ष, पशुपति मुद्रा, यक्ष-नारी जैसी मूर्तियाँ आध्यात्मिक आस्थाओं और प्रकृति पूजक संस्कृति का संकेत देती हैं।
- चित्रकला और सजावटी वस्तुएँ: मिट्टी के बर्तनों पर चित्रांकन, मनके आभूषण, टेराकोटा खिलौने सांस्कृतिक सौंदर्यबोध और कला प्रेम को प्रदर्शित करते हैं।
- लिपि व लेखन: हालांकि लिपि अभी पढ़ी नहीं गई है, लेकिन इसकी उपस्थिति ज्ञान प्रणाली और संप्रेषण कौशल को दर्शाती है।

निष्कर्ष:

सिन्धु घाटी सभ्यता की कला और स्थापत्य न केवल उसकी तकनीकी दक्षता का प्रमाण हैं, बल्कि वे एक परिष्कृत, संगठित और समृद्ध नगरी समाज के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पक्षों को भी प्रतिबिंबित करते हैं। ये अवशेष भारतीय उपमहाद्वीप में एक प्रारंभिक नगरीय सभ्यता की परिपक्वता का परिचायक हैं।

उत्तर: 3

भारत की मंदिर स्थापत्य कला न केवल धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक विविधता और क्षेत्रीय पहचान की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। गुप्तकाल से प्रारंभ होकर दक्षिण, उत्तर, पश्चिम और पूर्व भारत में विकसित नागर, द्रविड़, वेसर आदि शैलियाँ सामाजिक एकता और सांस्कृतिक एकीकरण की वाहक रही हैं।

1. सामाजिक एकता पर प्रभाव:

- सांप्रदायिक समन्वय: मंदिर पूजा केवल ब्राह्मणों तक सीमित न रहकर सामान्य जन तक पहुँची, जिससे जातीय और वर्गीय समरसता को बढ़ावा मिला।
- धार्मिक एकीकरण: तीर्थ यात्रा और धार्मिक उत्सवों ने विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक मंच पर लाया, जिससे सामाजिक एकता को बल मिला।
- लोक सहभागिता: मंदिर निर्माण और अनुष्ठानों में शिल्पकारों, मूर्तिकारों, नर्तकों, संगीतज्ञों आदि की सहभागिता ने समुदायों के बीच सहयोग को बढ़ावा दिया।
- दातृत्व संस्कृति का विकास: समाज के हर वर्ग से मंदिरों के निर्माण में योगदान देने की परंपरा ने सामूहिक जिम्मेदारी और एकता की भावना को प्रोत्साहित किया।

2. क्षेत्रीय संस्कृति पर प्रभाव:

- स्थानीय कला का संरक्षण: मंदिरों ने चित्रकला, नृत्य, संगीत, वाद्ययंत्र आदि क्षेत्रीय कलाओं को संरक्षित और प्रोत्साहित किया। जैसे – चोल मंदिरों में भरतनाट्यम और ओडिशा के मंदिरों में ओडिसी।
- स्थानीय परंपराओं का समावेश: मंदिरों में क्षेत्रीय देवताओं, मान्यताओं और लोकसंस्कृति को समाहित किया गया (जैसे – महाराष्ट्र में विट्ठल, बंगाल में दुर्गा)।
- भाषायी विविधता का पोषण: मंदिरों के शिलालेखों में संस्कृत के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग हुआ, जिससे भाषाओं का विकास हुआ।

3. स्थापत्य परंपराओं पर प्रभाव:

- स्थापत्य शैलियों का विकास:
    - o उत्तर भारत में नागर शैली,
    - o दक्षिण भारत में द्रविड़ शैली,
    - o मध्य भारत व दक्कन में वेसर शैली – इन शैलियों ने स्थानीय भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के अनुरूप वास्तुकला को विकसित किया।
- स्थानीय सामग्रियों का उपयोग: पत्थर, लकड़ी, ईंट आदि का चयन क्षेत्रीय पर्यावरण के आधार पर हुआ जिससे निर्माण तकनीकों में विविधता आई।
- प्रभावित स्थापत्य परंपराएं: मंदिर निर्माण ने बाद के काल में सिक्ख गुरुद्वारों, इस्लामी स्थापत्य और औपनिवेशिक स्थापत्य को भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया।

भारतीय मंदिर स्थापत्य केवल धार्मिक संरचना न होकर सामाजिक एकता का माध्यम, क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान का संवाहक और स्थापत्य नवाचार का प्रतीक है। यह भारत की विविधता में एकता को मूर्त रूप देता है। मंदिर वास्तुकला की यह धरोहर आज भी सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को प्रेरणा देती है।

उत्तर: 4

ऋग्वेद, भारत का सबसे प्राचीन ग्रंथ (1500–1000 ई.पू.), न केवल धार्मिक अनुष्ठानों का दस्तावेज है, बल्कि वह उस युग की सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय चेतना का दर्पण भी है। ऋग्वैदिक समाज में प्रकृति को ईश्वरीय रूप में देखा गया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय के मानव-प्रकृति संबंध गहरे, सहजीवी (symbiotic) और श्रद्धामय थे।

1. प्रकृति और देवताओं के बीच संबंध:

ऋग्वेद में देवता वास्तव में प्राकृतिक शक्तियों के सजीव प्रतीक हैं। प्रमुख उदाहरण:

- इंद्र – वज्रधारी वर्षा एवं युद्ध के देवता, जो बादलों को फाड़कर वर्षा लाते हैं।
- वरुण – जल, नदियों और नैतिकता के संरक्षक, जो 'ऋत' (cosmic order) की रक्षा करते हैं।
- अग्नि – अग्नि देवता, यज्ञों के माध्यम और पृथ्वी तथा स्वर्ग के बीच संचार सेतु।
- वायु – वायु देवता, प्राण और जीवन के वाहक।
- सूर्य (सविता/मित्र) – प्रकाश, समय और चेतना के दाता।

इससे स्पष्ट होता है कि देवताओं के माध्यम से ऋग्वैदिक समाज ने प्राकृतिक शक्तियों को न केवल पूज्य माना, बल्कि उन्हें नियंत्रित करने वाली और जीवनदायिनी शक्तियाँ भी माना।

2. मानव-प्रकृति संबंध की विशेषताएँ:

(i) श्रद्धा व पूज्यता का भाव:

प्राकृतिक तत्वों को 'देव' का दर्जा देकर उन्हें सम्मानित किया गया। यह उस समय के पर्यावरणीय संरक्षण की चेतना को दर्शाता है।

(ii) संतुलन और सहअस्तित्व:

ऋग्वैदिक ऋचाओं में 'ऋत' की अवधारणा (cosmic order) प्रकृति के संतुलन और उसके पालन की आवश्यकता को दर्शाती है।

(iii) प्रकृति के साथ संवाद:

ऋचाओं में देवताओं से संवाद की शैली (e.g., "इन्द्र वर्षा दो", "अग्नि हमें शक्ति दो") यह संकेत देती है कि ऋषि प्रकृति के साथ संवाद करने को मानवीय धर्म समझते थे।

(iv) यज्ञ और पर्यावरणीय सामंजस्य:

यज्ञ न केवल धार्मिक अनुष्ठान थे, बल्कि उनमें प्राकृतिक शक्तियों (अग्नि, वायु, सूर्य) की सक्रिय भागीदारी मानी जाती थी। इससे यह प्रतीत होता है कि यज्ञ प्रकृति के साथ सामंजस्य का प्रतीक था।

3. उस समय की पर्यावरणीय चेतना के संकेत:

पहलू	ऋग्वैदिक संकेत	अर्थ
जल संरक्षण	नदियों की स्तुति (सरस्वती, सिन्धु)	जल को जीवन का आधार माना गया
पशु संरक्षण	गाय को "अघन्या" (न मारने योग्य) कहा गया	आजीविका और नैतिकता दोनों से जुड़ा
वनस्पति महत्व	औषधियों की स्तुति	आयुर्वेदिक परंपराओं का बीज
जलवायु की समझ	ऋतुओं की पहचान (हेमंत, ग्रीष्म, वर्षा)	कृषि और यज्ञ दोनों में ऋतुचक्र का महत्व

ऋग्वैदिक संस्कृति में प्रकृति केवल उपयोग की वस्तु नहीं थी, बल्कि जीवन का एक पूजनीय और अविभाज्य हिस्सा थी। देवताओं के माध्यम से प्राकृतिक

शक्तियों को सम्मान देना, मानव और पर्यावरण के बीच गहन सहजीवी संबंध को दर्शाता है। यह दृष्टिकोण आज की पर्यावरणीय संकट की स्थिति में भी प्रेरणा देने वाला है।

सुझाव :

- वर्तमान समय में जब प्रकृति का दोहन बढ़ा है, तब ऋग्वैदिक दृष्टिकोण 'प्रकृति के साथ सामंजस्य' की भावना को पुनर्जीवित करने का आह्वान करता है।
- भारतीय पारंपरिक ज्ञान प्रणाली (Traditional Ecological Knowledge) को आज के पर्यावरणीय नीति निर्धारण में शामिल किया जाना चाहिए।

उत्तर: 5

सम्राट अशोक (268–232 BCE), मौर्य साम्राज्य के शासक, भारतीय इतिहास में धर्म, नीति, और संस्कृति को एकीकृत करने वाले पहले शासकों में से थे। अशोक की कला — जैसे स्तंभ, शिलालेख, गुफा स्थापत्य, और शिल्पकला — केवल धार्मिक प्रचार तक सीमित नहीं रही, बल्कि उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक एकता और साझा मूल्यों को स्थापित करने का माध्यम बनी।

मुख्य विश्लेषण:

1. कला के माध्यम से बौद्ध धर्म का प्रसार:

- अशोक ने बौद्ध धर्म को शांति, अहिंसा और करुणा के सिद्धांतों के साथ पूरे उपमहाद्वीप में फैलाया।
- स्तंभ लेख और रॉक एडिक्ट्स (शिलालेख) नेपाल, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, उड़ीसा, आंध्र और कर्नाटक तक पाए गए हैं — जिससे साझा नैतिकता और सांस्कृतिक धारा बनी।

2. स्थापत्य कला द्वारा सांस्कृतिक एकता:

- अशोक स्तंभ (जैसे सारनाथ, लौरिया नंदनगढ़): ब्राह्मी लिपि में नीति संदेश, जिससे विविध भाषाई क्षेत्रों को एक सामान्य विचारधारा से जोड़ा गया।
- गुफा स्थापत्य (बराबर गुफाएँ): स्थापत्य तकनीक की एकरूपता विभिन्न क्षेत्रों में देखी गई, जिसने एक साझा स्थापत्य परंपरा विकसित की।

3. शिलालेखों की भाषा और लिपि:

- ब्राह्मी और खरोष्ठी जैसी लिपियाँ तथा प्राकृत भाषा का प्रयोग – जिससे बहुभाषी समाजों को एक साथ जोड़ा गया।
- यूनानी और अरामाइक में भी शिलालेख मिले हैं (कंधार), जो अंतर्राष्ट्रीय संपर्क व सांस्कृतिक संवाद को दर्शाते हैं।

4. प्रतीकों की एकरूपता:

- अशोक काल में "धर्मचक्र", "हाथी", "सिंह" और "पदचिह्न" जैसे प्रतीकों का सार्वभौमिक प्रयोग हुआ — जिसने एक वैचारिक और सांस्कृतिक साझा पहचान बनाई।
- इन प्रतीकों को भारत के राष्ट्रीय प्रतीक (सिंह स्तंभ) के रूप में आज भी अपनाया गया है।

5. अंतरराष्ट्रीय प्रभाव और सांस्कृतिक आदान-प्रदान:

- अशोक के कला और संदेश श्रीलंका, म्यांमार और दक्षिण-पूर्व एशिया तक गए, जिससे 'बौद्ध संस्कृति' एक अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक सेतु बनी।

सीमाएँ:

- अशोक की कला का प्रभाव तत्कालीन ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित हो सकता है।
- बौद्ध धर्म के प्रसार के बावजूद कुछ क्षेत्रों में स्थानीय परंपराएँ और धार्मिकता बनी रही।

अशोक की कला केवल धार्मिक प्रचार का साधन नहीं थी, बल्कि यह भारतीय उपमहाद्वीप में सांस्कृतिक एकता, साझा नैतिकता, स्थापत्य परंपरा और प्रतीकात्मक एकरूपता को स्थापित करने का एक दूरदर्शी प्रयास थी। इसने विभिन्न जनजातियों, भाषाओं और क्षेत्रों के लोगों को एक सामान्य सांस्कृतिक धारा में बाँधने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उत्तर: 6

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में भारत में जनपदों से विकसित होकर महाजनपदों का स्वरूप सामने आया, जिसने भारतीय उपमहाद्वीप में संगठित राज्य-व्यवस्था की नींव रखी। इन्हीं महाजनपदों में से मगध का उत्थान विशेष रूप से राजनीतिक एकीकरण की दिशा में निर्णायक रहा।

महाजनपदों का उदय और राजनीतिक एकीकरण:

1. राजनीतिक विकेंद्रीकरण से केंद्रीकरण की ओर:

- प्रारंभिक वैदिक काल की जनजातीय व्यवस्था से हटकर जनपद और फिर महाजनपद एक स्थायी भू-राजनीतिक इकाई बन गए।
- इससे राज्यों की सीमाएं, प्रशासन और सैन्य संगठन स्पष्ट हुए।

2. संघर्ष और प्रतिस्पर्धा:

- 16 महाजनपदों में आपसी संघर्ष ने एक प्रभुत्वशाली शक्ति की आवश्यकता को जन्म दिया।
- यह प्रतिस्पर्धा राज्य विस्तार और केंद्रीकरण की ओर ले गई।

3. धर्म और दर्शन का योगदान:

- बौद्ध और जैन धर्म जैसे दर्शन महाजनपदों में उभरे, जिन्होंने नैतिक राज्य और शासन की अवधारणा को बढ़ावा दिया।
- इसने सामाजिक एकता और राजनीतिक अधीनता की स्वीकृति को बल दिया।

मगध का उत्थान और राजनीतिक एकीकरण:

1. सामरिक और भौगोलिक लाभ:

- गंगा के मैदान में स्थित होने के कारण मगध को व्यापार, कृषि, जल परिवहन, और सैन्य अभियानों में सुविधा मिली।

2. प्रशासकीय दक्षता और शक्तिशाली राजवंश:

- हर्यंक, शिशुनाग, नंद और मौर्य वंशों ने क्रमशः प्रशासनिक नवाचार, कर प्रणाली, और सेना के विस्तार के माध्यम से साम्राज्य निर्माण को संभव किया।

3. चाणक्य और मौर्य प्रशासन:

- चाणक्य की कूटनीति और चंद्रगुप्त मौर्य की नेतृत्व क्षमता ने भारत के बड़े हिस्से को एक राजनीतिक इकाई में बांध दिया।
- अशोक के शासन में लगभग सम्पूर्ण उपमहाद्वीप एक छत्र सत्ता में आया – यह भारतीय इतिहास का पहला सुव्यवस्थित राजनीतिक एकीकरण था।

महाजनपदों के उदय ने जहां प्रारंभिक राजनैतिक संरचना को आकार दिया, वहीं मगध के उत्थान ने भारत के इतिहास में एक स्थायी, केंद्रीयकृत और एकीकृत राज्य की अवधारणा को साकार किया। इस प्रक्रिया ने आगे चलकर मौर्य, गुप्त और अन्य साम्राज्यों की स्थापना की पृष्ठभूमि तैयार की, जिससे भारत में राजनीतिक एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ।

उत्तर: 7

छठी शताब्दी ईसा पूर्व को प्राचीन भारत के इतिहास में एक धार्मिक-दार्शनिक क्रांति का युग माना जाता है। इस काल में बौद्ध और जैन जैसे श्रमण आंदोलन सामने आए, जिन्होंने वैदिक ब्राह्मणवादी व्यवस्था को चुनौती दी और समाज में गहरे बदलाव लाए। इन आंदोलनों ने न केवल धार्मिक क्षेत्र में बल्कि सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए।

बौद्ध और जैन परंपराओं का सामाजिक परिवर्तन में योगदान:

1. वर्ण व्यवस्था और सामाजिक समानता:

- इन धर्मों ने जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था को अस्वीकार किया।
- बौद्ध धर्म में संघ प्रवेश सभी जातियों के लिए खुला था — उदाहरण: अम्बपाली (नर्तकी), सुत्त सोम (शूद्र)।
- जैन धर्म ने भी समानता और अहिंसा के सिद्धांतों के तहत जाति भेद को अस्वीकार किया।

2. महिला सशक्तिकरण:

- बौद्ध धर्म ने महिलाओं को संघ में प्रवेश की अनुमति दी — महाप्रजापति गौतमी प्रथम भिक्षुणी थीं।
- यद्यपि कुछ सीमाएँ थीं, फिर भी यह उस समय की प्रमुख सामाजिक क्रांति थी।

Add-New Delhi E-mail-k.nitinca@gmail.com Contact-9999154587

- जैन धर्म में भी महिलाएँ साध्वी बन सकती थीं, हालाँकि उनमें दीक्षा के नियम कठोर थे।

3. अहिंसा और करुणा का प्रसार:
- दोनों परंपराओं ने अहिंसा को सर्वोच्च नैतिक मूल्य माना, जिससे पशु बलि की परंपरा में कमी आई।
- यह विशेषकर सामाजिक आचरण और जीवनशैली में नैतिक सुधार का संकेत था।

4. शुद्ध आचरण एवं नैतिक मूल्यों का प्रचार:
- बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग (सम्यक दृष्टि, सम्यक कर्म, सम्यक आजीविका आदि) और
- जैन धर्म के पंचमहाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) ने व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण में नैतिकता को प्राथमिकता दी।

5. जन-साधारण के लिए धर्म का सरलीकरण:
- संस्कृत की जगह पालि (बौद्ध) और प्राकृत (जैन) जैसी जनभाषाओं को माध्यम बनाया गया।
- इससे आम जनता धर्म और दर्शन को समझने और अपनाने में सक्षम हो सकी, जिससे सामाजिक जागरूकता बढ़ी।

6. शिक्षा और बौद्धिक विकास:
- बौद्ध विहारों और जैन मठों ने शिक्षा के केंद्र के रूप में कार्य किया — नालंदा, विक्रमशिला, वल्लभी जैसे संस्थान उभरे।
- इससे समाज में बौद्धिक जागरूकता, नैतिक शिक्षा और धार्मिक सहिष्णुता को बल मिला।

7. आर्थिक दृष्टिकोण से बदलाव:
- जैन धर्म ने व्यापारिक समुदाय को आकर्षित किया, जिससे अर्थव्यवस्था और नगर संस्कृति का विकास हुआ।
- बौद्ध धर्म ने भिक्षु जीवन अपनाने के कारण साधनों की न्यूनतम आवश्यकता को प्रोत्साहित किया, जिससे साधनों की समानता की भावना फैली।

बौद्ध और जैन धार्मिक आंदोलनों ने न केवल धार्मिक दृष्टिकोण बदले, बल्कि सामाजिक संरचना को भी मानवीय और न्यायसंगत बनाया। इन्होंने वर्ण-आधारित भेदभाव, अंधविश्वास, हिंसा, और ब्राह्मणवादी जटिलता को चुनौती दी और समता, अहिंसा, नैतिकता और जन-सुलभ धर्म की नींव रखी। ये आंदोलन भारतीय समाज में सामाजिक सुधार और मानवतावादी सोच की दिशा में एक निर्णायक मोड़ साबित हुए।

उत्तर: 8

हड़प्पा सभ्यता (2600–1900 ई.पू.) भारत की सबसे प्राचीन शहरी सभ्यताओं में से एक थी, जिसे सिंधु घाटी सभ्यता भी कहा जाता है। इसकी नगर योजना न केवल भौतिक रूप से सुव्यवस्थित थी, बल्कि यह तत्कालीन समाज की प्रशासनिक दक्षता और आर्थिक कुशलता को भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करती है।

1. नगर योजना और प्रशासनिक सोच का प्रतिबिंब:
- संगठित नगर नियोजन:
  - हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, धोलावीरा जैसे स्थलों में ग्रिड पैटर्न पर बसी सड़कें (उत्तर-दक्षिण व पूर्व-पश्चिम) उच्च स्तर की योजना का संकेत हैं।
  - यह दर्शाता है कि नगर निर्माण पूर्वनियोजित था, जो एक सशक्त प्रशासनिक तंत्र की ओर संकेत करता है।
- विभाजित नगर संरचना:
  - 'ऊपरी नगर (Acropolis)' व 'निचला नगर (Lower Town)' का विभाजन दर्शाता है कि शासक वर्ग, अधिकारी व आम नागरिकों के लिए अलग-अलग क्षेत्र निर्धारित थे।
  - यह सामाजिक संगठन और प्रशासनिक नियंत्रण को दर्शाता है।
- सिविक सुविधाएँ और जल प्रबंधन:
  - मोहनजोदड़ो का महान स्नानागार, ढक्कनयुक्त नालियाँ, जल निकासी व्यवस्था और कुओं की व्यवस्था दिखाती है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य व स्वच्छता पर ध्यान दिया गया था।
  - इससे पता चलता है कि शासन व्यवस्था नागरिक हितों को प्राथमिकता देती थी।
- संगठित निर्माण और नियंत्रण:
  - ईंटों का एक समान आकार, भवन निर्माण में एकरूपता और योजना में समरूपता से यह स्पष्ट है कि निर्माण कार्य केंद्रीकृत नियोजन के तहत होता था।

2. आर्थिक दृष्टिकोण से नगर योजना की उन्नत सोच:
- व्यापार के लिए सुव्यवस्थित केंद्र:
  - बंदरगाह नगर लोथल में गोदी (dockyard) और गोदाम (warehouse) की उपस्थिति दिखाती है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को ध्यान में रखकर योजनाएँ बनाई गई थीं।
  - मोहरें (seals), माप और तौल की एकरूप प्रणाली से व्यापारिक पारदर्शिता का प्रमाण मिलता है।
- व्यवस्थित बाजार और औद्योगिक क्षेत्र:
  - नगरों में हस्तशिल्प कार्यशालाएँ, मनके बनाने के केंद्र, धातु कार्य आदि आर्थिक गतिविधियों के लिए नियोजित स्थानों की ओर संकेत करते हैं।
- भंडारण सुविधा:
  - अनाज के कोठार (granaries) यह बताते हैं कि कृषि अधिशेष का नियोजन और वितरण सुनियोजित ढंग से किया जाता था।
  - इससे खाद्य सुरक्षा एवं कर-संग्रह प्रणाली की जानकारी मिलती है।

3. अन्य व्यवस्थाओं में प्रशासनिक समझ:
- सामूहिक निर्णय की संभावना:
  - किसी एक सम्राट या राजा के प्रमाण का अभाव दर्शाता है कि संभवतः नगर समितियों या प्रशासकों का समूह शासन चलाता था, जो सामूहिक प्रशासन की उन्नत सोच को दर्शाता है।
- कानून व्यवस्था की झलक:
  - एक समान नगर योजनाएं, सार्वजनिक संरचनाएं, और नागरिक अनुशासन इस बात की ओर इशारा करते हैं कि वहाँ कानून व्यवस्था और सामाजिक अनुशासन था।

हड़प्पा सभ्यता की नगर योजना केवल भौगोलिक संरचना नहीं, बल्कि प्रशासनिक दूरदृष्टि और आर्थिक सुगठना का मूर्त रूप है। यह उस समय के समाज की संगठित शासन प्रणाली, सार्वजनिक सुविधा व्यवस्था, और विकसित आर्थिक ढांचे का प्रमाण प्रस्तुत करती है। आधुनिक शहरी नियोजन में आज भी हड़प्पा सभ्यता की कई अवधारणाएँ प्रासंगिक मानी जाती हैं।

उत्तर: 9

प्राचीन भारत की राजनीतिक संरचना केवल राजशाही तक सीमित नहीं थी। बौद्ध ग्रंथों, महाजनपदों और यूनानी यात्रियों के विवरणों से यह प्रमाणित होता है कि कुछ क्षेत्रों में गण एवं संघ (republics) जैसे संस्थानों ने लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों वाली वैकल्पिक राजनीतिक व्यवस्था को जन्म दिया था।

1. संघों की विशेषताएँ:
- सामूहिक नेतृत्व: निर्णय लेने के लिए एक सभा होती थी (जैसे लिच्छवि गणराज्य), जिसमें राजाओं की बजाय निर्वाचित या मनोनीत सदस्यों का शासन होता था।
- गण परिषद (Assembly): सदस्य नीति, युद्ध, कर, न्याय आदि निर्णयों में भाग लेते थे।
- कार्यपालिका: छोटे समूह (संघ या समिति) प्रशासनिक कार्यों का संचालन करते थे।
- प्राकृतिक सीमाओं के अनुसार सीमित भूभाग: अधिकतर संघ सीमित क्षेत्रीय थे, जैसे शाक्य, मल्ल, लिच्छवि आदि।

2. वैकल्पिक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में योगदान:

Add-New Delhi E-mail-k.nitinca@gmail.com Contact-9999154587

- राजशाही की तुलना में सामूहिक निर्णय की परंपरा: सत्ता का विकेन्द्रीकरण, स्थानीय प्रशासन में भागीदारी।
- समानता की प्रवृत्ति: सत्ताधारी वर्गों में सामाजिक समानता अधिक थी।
- बौद्ध धर्म का प्रसार: बौद्ध संघों के माध्यम से लोकतांत्रिक मूल्यों का पोषण हुआ।

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation):

सकारात्मक पक्ष	सीमाएँ/आलोचना
वैकल्पिक शासन की मिसाल	संघ सीमित क्षेत्रों तक सीमित थे
लोकतांत्रिक परंपराओं की नींव	महिलाओं और दासों को राजनीतिक भागीदारी नहीं
निर्णय प्रक्रिया में सहमति का महत्व	युद्ध एवं विदेशी आक्रमण के समय निर्णय में धीमापन
नैतिकता और धार्मिकता पर आधारित शासन	संगठित सैन्य शक्ति का अभाव

प्राचीन भारत की संघ परंपराएँ लोकतांत्रिक और साझेदार शासन के महत्वपूर्ण बीज थीं, जिनकी जड़ें स्वतंत्रता, संवाद और सहमति में थीं। यद्यपि वे सीमित समय और स्थान में ही प्रभावी रहीं, फिर भी उन्होंने भारतीय राजनीतिक सोच को एक वैकल्पिक दिशा प्रदान की।

उत्तर: 10

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय समाज जाति, लिंग और धार्मिक कट्टरता से ग्रस्त था। महिलाओं की स्थिति विशेषकर शोचनीय थी — सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा अत्याचार, शिक्षा से वंचितता जैसी कुरीतियाँ प्रचलित थीं। ऐसे समय में सामाजिक सुधारकों ने महिलाओं के अधिकारों की दिशा में क्रांतिकारी प्रयास किए।

1. राजा राम मोहन राय:

- सती प्रथा का उन्मूलन:
  - 1818 में विरोध शुरू, 1829 में लॉर्ड विलियम बेंटिक के सहयोग से सती प्रथा निषेध अधिनियम पारित करवाया।
  - महिलाओं के जीवन और गरिमा की रक्षा में अग्रणी भूमिका।
- महिला शिक्षा का समर्थन:
  - शिक्षा को आत्मनिर्भरता का साधन माना।
  - भारतीय प्रेस के माध्यम से महिलाओं की स्थिति पर जनमत निर्माण किया।
- धार्मिक पुनर्व्याख्या:
  - हिन्दू धर्मग्रंथों का प्रयोग कर सती प्रथा को असंवैदिक सिद्ध किया।

2. ईश्वर चंद्र विद्यासागर:

- विधवा पुनर्विवाह का समर्थन:
  - 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पास कराने में भूमिका।
  - सामाजिक विरोध के बावजूद विधवा विवाह को वैधानिकता दिलाई।
- महिला शिक्षा:
  - बंगाल में लड़कियों के लिए स्कूलों की स्थापना।
  - महिलाओं की शिक्षा को समाज सुधार का आधार माना।
- बाल विवाह का विरोध:
  - कम आयु में विवाह के सामाजिक और शारीरिक प्रभावों को उजागर किया।

मूल्यांकन (Evaluation):

सकारात्मक योगदान	सीमाएँ/चुनौतियाँ
सामाजिक चेतना का विस्तार	सुधार मुख्यतः उच्च जाति और शहरी क्षेत्र तक सीमित
विधायी सुधारों में योगदान	ग्रामीण भारत में प्रभाव धीमा
महिला अधिकारों की नींव रखी	परंपरावादी प्रतिक्रियाएँ और विद्रोह

राजा राम मोहन राय और ईश्वर चंद्र विद्यासागर जैसे सामाजिक सुधारकों ने न केवल महिलाओं के अधिकारों की नींव रखी बल्कि आधुनिक भारत में महिला सशक्तिकरण की दिशा में प्रथम सार्थक प्रयास किए। उनका योगदान महिलाओं को मानवीय गरिमा दिलाने में ऐतिहासिक महत्व रखता है।

उत्तर: 11

औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत में पारंपरिक कृषि-प्रधान समाज का स्वरूप बदलने लगा। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, और ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के प्रभाव से श्रमिक वर्ग (working class) का जन्म हुआ। इस वर्ग ने धीरे-धीरे राष्ट्रीय आंदोलन में भी अपनी सक्रिय भागीदारी दर्ज कराई।

1. श्रमिक वर्ग के उद्भव की प्रक्रिया:

औपनिवेशिक आर्थिक नीतियाँ:

- ब्रिटिशों द्वारा भारतीय उद्योगों का दमन और विदेशों से मशीनों का आयात।
- ग्रामीण कारीगरों का रोजगार छिनना और रोज़गार की खोज में शहरों की ओर पलायन।

प्रारंभिक औद्योगिक विकास:

- 1850 के बाद रेलवे, कपड़ा उद्योग (मुंबई, अहमदाबाद), चाय-बागान (असम), कोयला खान (बंगाल, बिहार) आदि में श्रमिकों की आवश्यकता बढ़ी।

शहरों का उदय:

- बंबई, कलकत्ता, मद्रास जैसे बंदरगाह शहर औद्योगिक केंद्र बने, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों से श्रमिकों का पलायन हुआ।

श्रम शोषण:

- लंबे कार्य घंटे, न्यूनतम मजदूरी, कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं – इस सबने श्रमिकों में असंतोष बढ़ाया।

2. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में श्रमिकों की भूमिका:

प्रारंभिक भागीदारी:

- आरंभिक आंदोलन मध्यम वर्ग के नेतृत्व में रहे। श्रमिक अपेक्षाकृत निष्क्रिय रहे।
- 1870–80 के दशक में कुछ मजदूर संघ (जैसे – बॉम्बे मिल हैंड्स एसोसिएशन) बने।

सक्रिय भागीदारी (1918–1947):

- 1918 के बाद हड़तालों का दौर: महात्मा गांधी ने अहमदाबाद मिल हड़ताल (1918) का नेतृत्व किया।
- 1920s में श्रमिक आंदोलनों का विस्तार: AITUC (1920) की स्थापना से संगठित श्रम आंदोलन को बल मिला।
- क्रांतिकारी प्रभाव: भगत सिंह जैसे क्रांतिकारियों ने मजदूर वर्ग को वर्ग-संघर्ष के संदर्भ में संगठित किया।
- भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में रेल, फैक्ट्री और खदान श्रमिकों ने हड़तालें कीं, जिससे औपनिवेशिक व्यवस्था अस्थिर हुई।

3. मूल्यांकन (Assessment):

- श्रमिक वर्ग की भूमिका धीरे-धीरे उभरी, परंतु 1940 के दशक में यह निर्णायक बन गई।
- हालाँकि, उनके आंदोलनों की सीमाएं भी थीं – जैसे संगठन की कमी, क्षेत्रीय सीमितता, वर्गीय चेतना का अभाव।
- फिर भी, उनकी सहभागिता ने स्वतंत्रता आंदोलन को जन-आंदोलन में बदलने में मदद की।

औपनिवेशिक भारत में श्रमिक वर्ग का जन्म न केवल एक आर्थिक परिवर्तन का संकेत था, बल्कि यह भारत के स्वतंत्रता संग्राम में जनसहभागिता के विस्तार का प्रतीक भी बना। उन्होंने शोषण के विरुद्ध संघर्ष करते हुए, अंततः औपनिवेशिक सत्ता की नींव को चुनौती दी।

उत्तर: 12:

9 अगस्त 1942 को महात्मा गांधी द्वारा "करो या मरो" (Do or Die) के आह्वान के

Add-New Delhi E-mail-k.nitinca@gmail.com Contact-9999154587

साथ प्रारंभ हुआ भारत छोड़ो आंदोलन स्वतंत्रता संघर्ष का अंतिम और निर्णायक चरण था। यह आंदोलन व्यापक जनभागीदारी, तीव्र असंतोष और युद्धकालीन परिस्थितियों की देन था।

1. भारत छोड़ो आंदोलन के प्रारंभ को अनिवार्य बनाने वाले प्रमुख कारक:

राजनीतिक असंतोष:

- क्रिप्स मिशन (1942) की असफलता ने कांग्रेस के धैर्य की सीमा पार कर दी।
- ब्रिटिशों ने स्वतंत्रता का वादा तो किया, पर स्पष्ट समयसीमा नहीं दी।

युद्धकालीन शोषण:

- द्वितीय विश्व युद्ध में भारत को जबरन झोंका गया; भारतीय संसाधनों और जनशक्ति का उपयोग बिना जन-सहमति के किया गया।
- राशनिंग, महँगाई, युद्ध-कर ने आम जनता को बुरी तरह प्रभावित किया।

सामाजिक असंतोष:

- 1943 का बंगाल अकाल और प्रशासनिक उदासीनता से ब्रिटिश शासन के प्रति व्यापक असंतोष फैला।
- श्रमिक वर्ग, किसान, छात्र, महिलाएं – सभी वर्गों में रोष था।

अंतरराष्ट्रीय संदर्भ:

- जापान की सफलताएँ और बर्मा तक पहुँच से ब्रिटिश साम्राज्य की कमजोर स्थिति उजागर हुई।
- मित्र राष्ट्र "लोकतंत्र की रक्षा" की बात कर रहे थे, जबकि भारत में स्वयं लोकतंत्र नहीं था।

कांग्रेस और गांधीजी की सोच:

- गांधीजी ने स्पष्ट रूप से कहा: “एक गुलाम राष्ट्र की सेवा नहीं की जा सकती”।
- कांग्रेस नेतृत्व इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अब पूर्ण स्वतंत्रता के बिना कोई विकल्प नहीं बचा।

2. आंदोलन की प्रकृति और प्रभाव:

- नेतृत्व की गिरफ्तारी के बावजूद आंदोलन स्वस्फूर्त रूप से गांव-गांव में फैला।
- छात्रों, किसानों, महिलाओं, भूमिगत कार्यकर्ताओं ने ब्रिटिश संस्थानों को चुनौती दी।
- यद्यपि आंदोलन को कुचल दिया गया, पर इसने यह संदेश दे दिया कि अब “स्वतंत्रता ही अंतिम लक्ष्य” है।

भारत छोड़ो आंदोलन कोई अचानक घटित घटना नहीं थी, बल्कि यह युद्धकालीन अन्याय, राजनीतिक अपमान और सामाजिक असंतोष की परिणति थी। इसने ब्रिटिश शासन को यह स्पष्ट संकेत दे दिया कि अब भारत को स्वतंत्रता से वंचित नहीं रखा जा सकता।

उत्तर: 13

स्वदेशी आंदोलन (1905 के बंग-भंग विरोध से प्रारंभ) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का वह चरण था जिसमें "स्वदेशी" वस्तुओं का प्रयोग और "विदेशी" वस्तुओं का बहिष्कार एक सशक्त राजनीतिक-सामाजिक कार्यक्रम बना। इस आंदोलन ने भारतीय राष्ट्रवाद को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे आर्थिक आत्मनिर्भरता के विचार से भी जोड़ा।

मुख्य बिंदु:

1. आर्थिक आत्मनिर्भरता का बीज

- अंग्रेजी वस्त्रों के बहिष्कार और स्वदेशी कपड़े, साबुन, दियासलाई, कागज़ आदि के उपयोग से यह स्पष्ट हुआ कि आर्थिक स्वतंत्रता भी राजनीतिक स्वतंत्रता का आवश्यक अंग है।
- स्थानीय उद्योगों को पुनर्जीवित करने का प्रयास जैसे बंगाल के खादी उद्योग, कुटीर उद्योगों का प्रोत्साहन।

2. ‘स्वदेशी’ का व्यापक दृष्टिकोण

- यह केवल एक आर्थिक कार्यक्रम न होकर सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण भी था।
- रविन्द्रनाथ टैगोर, अरविन्द घोष और बिपिन चंद्र पाल जैसे नेताओं ने इसे आत्मनिर्भरता और आत्मगौरव का प्रतीक बताया।

3. शिक्षा और संस्थागत आत्मनिर्भरता

- राष्ट्रवादी शिक्षा संस्थानों की स्थापना जैसे – बंगाल नेशनल कॉलेज।
- ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के स्थान पर भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय चेतना से युक्त पाठ्यक्रम।

4. दीर्घकालिक प्रभाव

- गांधीजी के नेतृत्व में आगे चलकर ‘खादी आंदोलन’ और ‘ग्राम स्वराज’ की संकल्पना इसी विचारधारा की निरंतरता थी।
- आर्थिक योजनाओं में आत्मनिर्भरता की अवधारणा – योजना आयोग, आयात प्रतिस्थापन नीतियाँ आदि इसी की परिणति मानी जा सकती हैं।

स्वदेशी आंदोलन ने केवल विदेशी शासन के विरोध की रणनीति नहीं रची, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद को स्वावलंबन और आत्मसम्मान से जोड़ा। इस आंदोलन ने यह स्पष्ट कर दिया कि बिना आर्थिक स्वतंत्रता के राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी है।

उत्तर: 14:

1857 का विद्रोह एक ऐसी घटना थी जिसने संपूर्ण ब्रिटिश सत्ता को झकझोर दिया। भले ही इसकी शुरुआत सैनिकों (सिपाहियों) द्वारा की गई थी, परन्तु यह शीघ्र ही एक व्यापक जनविद्रोह में बदल गया। यह विद्रोह सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक असंतोष का संगठित स्वरूप बन गया।

1. सैन्य विद्रोह से परे – सामाजिक समर्थन

- अवध, झांसी, बिहार, बुंदेलखंड, दिल्ली, मध्य भारत में जनता – किसान, जमींदार, शिल्पकार – का सक्रिय समर्थन।
- सिपाही केवल उत्प्रेरक बने, असंतोष पहले से ज्वलंत था।

2. धार्मिक और सांस्कृतिक चिंता

- कारतूस में गाय-सुअर की चर्बी का उपयोग केवल बहाना नहीं था, बल्कि यह आस्था पर हमला माना गया।
- ‘ईसाईकरण’ की आशंका, सामाजिक कुरीतियों पर जबरन सुधार (सती प्रथा उन्मूलन आदि) से आक्रोश।

3. आर्थिक असंतोष

- भारी कराधान, लगान वसूली के अमानवीय तरीके, पारंपरिक उद्योगों का पतन, किसानों और दस्तकारों की बदहाली।
- ‘स्थायी बंदोबस्त’ के तहत जमींदारों और किसानों दोनों का शोषण।

4. राजनीतिक असंतोष

- ‘लॉर्ड डलहौजी’ की हड़प नीति, रियासतों का विलय – झांसी, सतारा, अवध, नागपुर।
- मुगलों के अस्तित्व का संकट, बहादुर शाह ज़फ़र की गिरफ्तारी और अपमान।

5. महिलाओं और स्थानीय नेतृत्व की भूमिका

- रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हज़रत महल, झलकारी बाई जैसे चरित्रों ने सामाजिक चेतना को उभारा।
- स्थानीय जातीय, धार्मिक और सामाजिक समूहों की एकजुटता ने इसे केवल सिपाही आंदोलन नहीं रहने दिया।

1857 का विद्रोह वास्तव में भारत की जनता के भीतर लंबे समय से पनप रहे असंतोष और उपेक्षा की अभिव्यक्ति थी। यह केवल सैनिक विद्रोह नहीं बल्कि भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनाक्रोश का प्रथम संगठित रूप था, जो भविष्य के राष्ट्रीय आंदोलन की नींव बना।

उत्तर: 15

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 1885 में हुई, जो कालान्तर में भारत के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करने वाली प्रमुख संस्था बनी। इसके प्रारंभिक स्वरूप को समझने के लिए उस समय उभर रहे भारतीय शिक्षित मध्यवर्ग की भूमिका को समझना आवश्यक है, जो औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की उपज था।

Add-New Delhi E-mail-k.nitinca@gmail.com Contact-9999154587

1. मध्यवर्ग का उदय और उसकी राजनीतिक आकांक्षाएँ:

- अंग्रेजी शिक्षा, प्रेस की स्वतंत्रता, रेलवे व टेलीग्राफ जैसे साधनों से एक शिक्षित, शहरी मध्यम वर्ग विकसित हुआ।
- यह वर्ग सरकारी नौकरियों में अवसर, प्रशासन में भागीदारी, भारतीयों के साथ समान व्यवहार और न्यायपूर्ण शासन की माँग करने लगा।

2. कांग्रेस की स्थापना और मध्यवर्ग की भूमिका:

- कांग्रेस की स्थापना ए.ओ. ह्यूम जैसे ब्रिटिश उदारवादियों की मदद से हुई, लेकिन इसके प्रारंभिक नेता (दादाभाई नौरोजी, फीरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि) शिक्षित मध्यवर्ग से ही थे।
- कांग्रेस के शुरुआती अधिवेशन उच्चवर्गीय शहरी क्षेत्रों तक सीमित रहे, जहाँ बहसें प्रशासनिक सुधार, भारतीयों के साथ भेदभाव, और शासकीय जवाबदेही तक केंद्रित थीं।

3. कांग्रेस की प्रारंभिक मांगें:

- लोक सेवा में समान अवसर,
- भारतीय परिषदों में अधिक प्रतिनिधित्व,
- भाषण और प्रेस की स्वतंत्रता,
- न्यायपालिका में सुधार।

4. कांग्रेस = राजनीतिक मंच + मध्यवर्गीय आकांक्षा:

- कांग्रेस के माध्यम से मध्यवर्ग ने अपनी राजनीतिक असंतोष की वैधानिक अभिव्यक्ति की।
- कांग्रेस 'सेफ्टी वॉल्व' के रूप में प्रारंभ भले हुई हो, लेकिन वह शीघ्र ही भारतीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधि मंच बन गई।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रारंभिक रूप वास्तव में भारतीय मध्यवर्ग की राजनीतिक चेतना, आत्म-सम्मान और औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध असंतोष की अभिव्यक्ति थी। यद्यपि इसकी पहुँच सीमित थी, परंतु यह एक संगठित राजनीतिक मंच बना, जिसने आगे चलकर व्यापक जनसमर्थन प्राप्त किया।

उत्तर: 16

महात्मा गांधी ने 1915 में भारत आगमन के बाद राष्ट्रीय आंदोलन को नया रूप दिया। उनके नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम जन-आंदोलन में परिवर्तित हुआ, जिसमें किसान, मजदूर, महिलाएँ और शहरी मध्यम वर्ग भी शामिल हुए। परंतु यह समावेश पूर्ण नहीं था।

1. गांधीजी की नेतृत्व शैली की विशेषताएँ:

- सत्याग्रह व अहिंसा: हिंसा का त्याग कर नैतिक बल से लड़ाई।
- जनभागीदारी: असहयोग, सविनय अवज्ञा व भारत छोड़ो जैसे आंदोलनों में व्यापक जनसहभागिता।
- भारतीयकरण: खादी, स्वदेशी व ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर बल।
- धार्मिक समरसता: सभी धर्मों को साथ लाने का प्रयास।

2. आंदोलन को जन-आंदोलन बनाने में सफलता:

- किसानों और ग्रामीण जनता को पहली बार राजनीतिक रूप से जोड़ा (चंपारण, खेड़ा, बारडोली आंदोलनों के माध्यम से)।
- महिलाओं की भागीदारी बढ़ी (सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा, अर्शिया बेगम आदि)।
- हरिजन आंदोलन, खादी प्रचार, शराबबंदी से गाँव-गाँव में चेतना।

3. लेकिन सबको समान रूप से क्यों नहीं जोड़ सके?

- दलितों व अस्पृश्य समुदाय के साथ वैचारिक टकराव (अंबेडकर बनाम गांधी – पूना समझौता)।
- क्रांतिकारी संगठनों (भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद आदि) की विचारधारा से मतभेद।
- मुस्लिम समुदाय: खिलाफत आंदोलन में सहयोग के बाद भी अंततः अलगाव की भावना बढ़ी, जो आगे चलकर विभाजन में परिणत हुई।
- कम्युनिस्ट एवं ट्रेड यूनियन आंदोलन से सीमित संबंध।
- पूर्वोत्तर और दक्षिण भारत के कई क्षेत्रों में गांधीवादी आंदोलनों की सीमित प्रभावशीलता।

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आंदोलन को जन-आधारित रूप देकर उसे व्यापक सामाजिक आंदोलन में बदला, परंतु यह समस्त सामाजिक समूहों की समान भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर सका। यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि भी है और आलोचना का विषय भी — जिससे यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया बहुस्तरीय और जटिल थी।

उत्तर: 17

क्रांतिकारी आंदोलनों ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक अलग ही धारा को जन्म दिया। यद्यपि इन आंदोलनों को गाँधीवादी जन आंदोलन जैसी व्यापक लोकप्रियता नहीं मिली, लेकिन इन्होंने स्वतंत्रता संग्राम की विचारधारा, दिशा और स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया।

1. प्रेरणा व उद्देश्य:

- क्रांतिकारियों का लक्ष्य था — औपनिवेशिक शासन को बलपूर्वक उखाड़ फेंकना।
- यूरोपीय क्रांतियों, रूस की बोल्शेविक क्रांति और भारतीय परंपराओं से प्रेरणा ली।

2. स्वतंत्रता संग्राम की विचारधारा पर प्रभाव:

- बलिदान और देशप्रेम की भावना: भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद जैसे क्रांतिकारियों ने युवाओं को साहस और आत्मबलिदान की प्रेरणा दी।
- ब्रिटिश राज की वैधता को चुनौती: ब्रिटिश शासन को नैतिक रूप से गलत ठहराकर उसकी वैधता को जनमानस में चुनौती दी।
- औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध उग्र प्रतिरोध का मार्ग: जन आंदोलनों के साथ-साथ संघर्ष के अन्य रूपों की संभावनाओं को भी स्वीकार्यता मिली।
- धर्मनिरपेक्षता और वैज्ञानिक सोच का प्रचार: भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी समाजवाद, समानता और धर्मनिरपेक्षता के समर्थक थे, जिससे स्वतंत्र भारत की वैचारिक नींव मजबूत हुई।

3. कांग्रेस और क्रांतिकारियों के बीच अंत:संबंध:

- यद्यपि कांग्रेस ने हिंसा का विरोध किया, परंतु क्रांतिकारियों की भावना और प्रेरणा का सम्मान किया गया।
- जेलों में बंद क्रांतिकारियों को समय के साथ जननायकों के रूप में देखा जाने लगा।

4. साहित्य और संस्कृति में प्रभाव:

- अनेक नाटकों, कविताओं और गीतों में क्रांतिकारी विचारधारा प्रमुख रही, जिससे जनचेतना का विस्तार हुआ।

क्रांतिकारी आंदोलनों ने स्वतंत्रता आंदोलन को वैचारिक दृढ़ता, साहसिकता और बलिदान की भावना से समृद्ध किया। भले ही उनके प्रत्यक्ष प्रयास सीमित रहे हों, परंतु विचारधारा के स्तर पर उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम की आत्मा को एक नई ऊर्जा दी।

उत्तर: 18

भारत विविधताओं का देश है — जातीय, भाषाई, धार्मिक, क्षेत्रीय और सांस्कृतिक। स्वतंत्रता के पश्चात देश को एक सूत्र में बाँधना एक अत्यंत कठिन कार्य था। इस एकता को बनाए रखने के लिए भारतीय राज्य ने कई स्तरों पर रणनीतियाँ अपनाईं।

1. संवैधानिक उपाय:

- संविधान की प्रस्तावना: न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता को मूल आदर्शों के रूप में स्थापित किया गया।
- भाषाई विविधता को मान्यता: अनुच्छेद 343-351 में हिंदी को राजभाषा बनाते हुए अन्य भाषाओं को भी मान्यता दी गई।
- धर्मनिरपेक्षता: सभी धर्मों को समान दृष्टि से देखने की संवैधानिक गारंटी।

2. संघात्मक ढाँचा:

- संघात्मक व्यवस्था: केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण (अनुच्छेद 245-263) विविधताओं को स्थान देने हेतु सहायक रहा।

NITIN SIR GLASSES

- राज्यों का भाषायी पुनर्गठन (1956): भाषाई आकांक्षाओं को स्वीकार करते हुए राज्यों का गठन किया गया।

3. लोकतांत्रिक प्रणाली:

- प्रतिनिधिक लोकतंत्र: सभी वर्गों, समुदायों और क्षेत्रों को राजनीतिक भागीदारी मिली।
- सार्वजनिक संस्थानों का निर्माण: योजना आयोग, निर्वाचन आयोग, न्यायपालिका जैसी संस्थाएँ लोकतांत्रिक एकता की नींव बनीं।

4. सामाजिक-सांस्कृतिक उपाय:

- सांस्कृतिक pluralism को बढ़ावा: भारत में विविधता को 'मिलीजुली संस्कृति' (composite culture) के रूप में प्रस्तुत किया गया।
- शिक्षा और मीडिया: एक राष्ट्रीय पहचान गढ़ने में NCERT, दूरदर्शन आदि की भूमिका रही।

5. चुनौतियाँ और समाधान:

- क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद, धार्मिक उग्रवाद जैसी चुनौतियाँ समय-समय पर सामने आईं।
- लेकिन भारतीय राज्य ने इनसे सख्ती और संवेदनशीलता दोनों के संतुलन से निपटने का प्रयास किया — जैसे पंजाब में आतंकवाद, उत्तर-पूर्व में अलगाववाद, तमिलनाडु में द्रविड़ आंदोलन।

'विविधता में एकता' भारत की पहचान है और स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय राज्य ने संविधान, लोकतंत्र और सांस्कृतिक समावेशिता के माध्यम से इस चुनौती का सफलतापूर्वक समाधान किया। यह प्रयास आज भी जारी है और भारत की एकता इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि बनी हुई है।

उत्तर: 19

हरित क्रांति 1960 के दशक के उत्तरार्ध में भारत में शुरू की गई एक प्रमुख कृषि सुधार प्रक्रिया थी, जिसका मुख्य उद्देश्य गेहूं और चावल जैसे अनाजों की उपज में वृद्धि करके खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना था। इस क्रांति ने देश को खाद्यान्न के आयातक से आत्मनिर्भर बनने में मदद की, किंतु इसके कई सामाजिक एवं क्षेत्रीय प्रभाव भी सामने आए।

1. खाद्य सुरक्षा में सुधार:

- गेहूं उत्पादन विशेषकर पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कई गुना बढ़ा।
- 1970 के दशक के अंत तक भारत को PL-480 के अंतर्गत अमेरिका से गेहूं मँगवाने की आवश्यकता समाप्त हो गई।

2. क्षेत्रीय असमानता:

- हरित क्रांति का प्रभाव मुख्यतः उन क्षेत्रों में दिखा जहाँ सिंचाई सुविधा, बिजली, और आधारभूत ढाँचा पहले से उपलब्ध था।
- पूर्वोत्तर, पूर्वी भारत, और वर्षा-आश्रित क्षेत्र इससे वंचित रह गए, जिससे क्षेत्रीय विषमता बढ़ी।

3. सामाजिक असमानता:

- बड़े और मध्यम किसानों को अधिक लाभ हुआ क्योंकि वे HYV बीज, रसायन और यंत्र खरीदने में सक्षम थे।
- सीमांत और लघु किसान तकनीकी बदलाव का लाभ नहीं उठा पाए, जिससे सामाजिक-आर्थिक विषमता बढ़ी।

4. श्रम संरचना में परिवर्तन:

- यंत्रीकरण के कारण खेतिहर श्रमिकों की मांग कुछ क्षेत्रों में कम हुई।
- दलित और भूमिहीन वर्गों की बेरोजगारी बढ़ी।

5. पर्यावरणीय प्रभाव:

- अत्यधिक जल दोहन और रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मिट्टी की गुणवत्ता और भूजल स्तर प्रभावित हुआ।
- मोनोक्रॉपिंग (केवल एक फसल पर निर्भरता) के कारण कृषि जैव विविधता घटी।

हरित क्रांति ने भारत को खाद्य संकट से उबारा और आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर किया, किंतु इसके सामाजिक, पर्यावरणीय और क्षेत्रीय प्रभावों को संतुलित करने के लिए 'दूसरी हरित क्रांति' या 'सतत कृषि' जैसे समावेशी सुधारों की आवश्यकता है, जो पूर्वोत्तर, आदिवासी और वंचित किसानों को भी समान अवसर प्रदान करे।

उत्तर: 20

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इंग्लैंड में आरंभ हुई औद्योगिक क्रांति ने उत्पादन प्रणाली को हस्तशिल्प से मशीन आधारित फैक्ट्री प्रणाली में परिवर्तित कर दिया। इस प्रक्रिया ने यूरोप की सामाजिक संरचना, श्रम संबंधों, आर्थिक संगठन और जीवनशैली में व्यापक परिवर्तन लाए।

आर्थिक संरचना पर प्रभाव:

1. उत्पादन साधनों में परिवर्तन:

- मशीनों और फैक्ट्रियों के आगमन से उत्पादन तीव्र, सस्ता और अधिक मात्रात्मक हुआ।

2. पूँजीवाद का उदय:

- व्यापारियों और उद्योगपतियों का उदय हुआ, जो पूँजी के मालिक बने और उत्पादन प्रक्रिया को नियंत्रित करने लगे।

3. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार:

- यूरोप ने अपने उपनिवेशों से कच्चा माल मंगाकर वहाँ निर्मित वस्तुएँ भेजना शुरू किया, जिससे वैश्विक व्यापार नेटवर्क मजबूत हुआ।

4. श्रम बाजार का विस्तार:

- ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी औद्योगिक केंद्रों की ओर श्रमिकों का पलायन हुआ।

सामाजिक संरचना पर प्रभाव:

1. शहरीकरण:

- लंदन, मैनचेस्टर, बर्मिंघम जैसे शहर तेजी से विकसित हुए, किंतु भीड़भाड़, गंदगी, और झुग्गियाँ आम हो गईं।

2. श्रमिक वर्ग का उदय:

- एक नया वर्ग उभरा – 'प्रोलितेरिएट' (labour class), जिसकी कार्य स्थितियाँ अत्यंत दयनीय थीं।
- मजदूरी, लंबे कार्य घंटे, बाल मजदूरी और श्रम शोषण आम हो गया।

3. सामाजिक असमानता:

- उद्योगपतियों और श्रमिकों के बीच आय और जीवनस्तर का अंतर अत्यधिक बढ़ गया।

4. श्रमिक आंदोलनों की शुरुआत:

- ट्रेड यूनियन, चार्टिस्ट मूवमेंट और समाजवाद की विचारधारा ने जन्म लिया।

5. शिक्षा और विज्ञान का प्रसार:

- तकनीकी कौशल की आवश्यकता के कारण विज्ञान, इंजीनियरिंग और व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा मिला।

औद्योगिक क्रांति ने यूरोप को आर्थिक समृद्धि और तकनीकी प्रगति की दिशा में अग्रसर किया, किंतु इसके साथ ही सामाजिक शोषण, असमानता और पर्यावरणीय समस्याएँ भी सामने आईं। यह क्रांति आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और वर्ग संरचना के मूल को समझने की कुंजी भी है।

NITIN SIR CLASSES